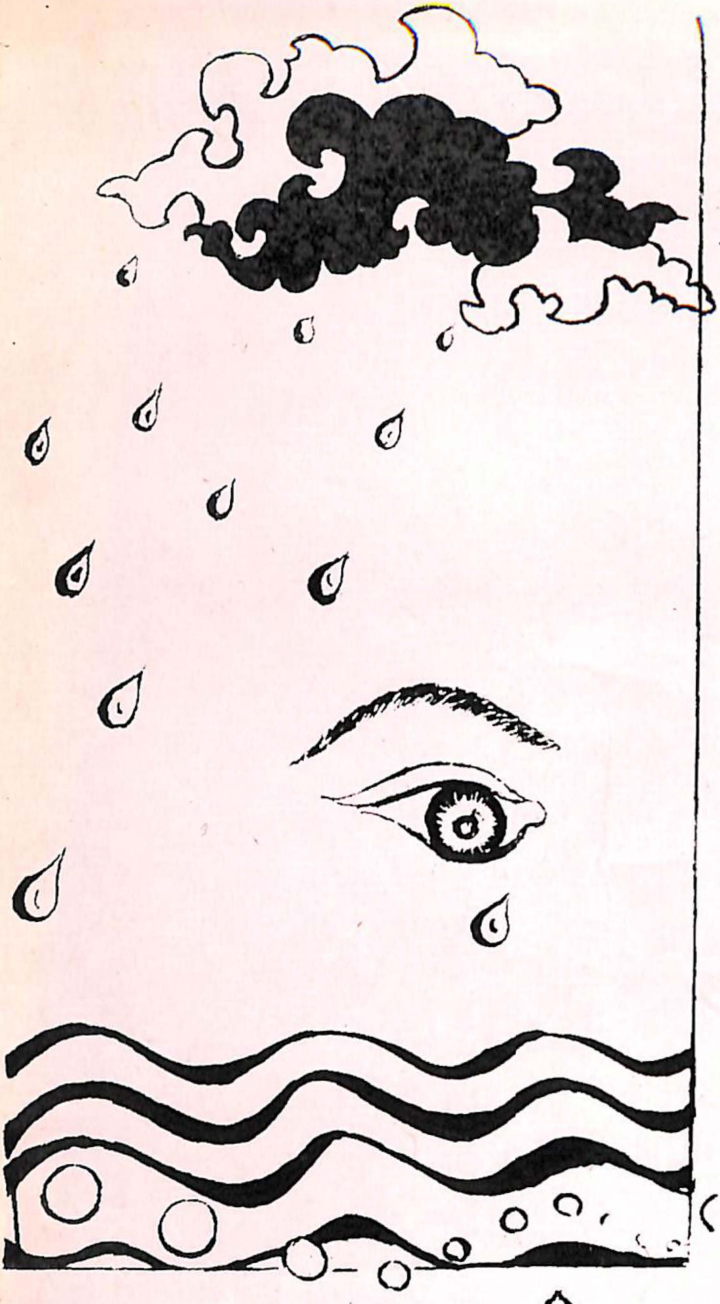

स्वाती बूंद और खारे मोती

(काव्यसंग्रह)

डॉ. सुशीला टाकभौरे

H
811.8
T 145 S
T 145 S

स्वाति बूंद और खारे मोती

(काव्य संग्रह)

प्रा. डा. सुशीला टाकभौरे

शारद प्रकाशन

१४, वैष्णव अपार्टमेन्ट,
सक्करदरा ले-आऊट, नागपूर - २४

प्रकाशक
शरद प्रकशन
१४ वैष्णव अपार्टमेन्ट
शक्करदरा ले आऊट, नागपूर - २४
महाराष्ट्र

संस्करण
प्रथम - १९९३

H
811.8
T 145 S

(C) लेखिकाधीन

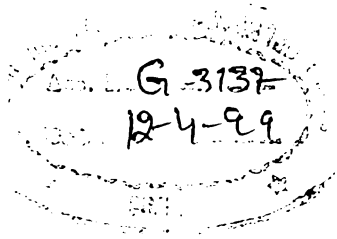

* कम्पोझींग टायपिंग
मिनाक्षी कप्युटर्स
सा. शोध, ३०, वैद्यनाथ चौक,
नागपुर -४४०००९

प्रिन्टर्स
गीतांजली प्रेस प्राइवेट लि.
घाट रोड, नागपुर

Library IIAS, Shimla
H 811.8 T 145 S
G3137

मुख पृष्ठ कल्पना

मूल्य १५/-

समर्पण

जीवन में आये वे क्षण
जब अनुभूति पुंजीभूत होकर
काव्य पंक्तियाँ बन गयीं-
जीवन की राह में मिले वे लोग
जो क्षण भरू में
बिजली की चमक से
उतरते चले आये मन में
संवेदना की राह से-
अनमोल भाव-मुक्ता
स्वाति से सीपी तक
समर्पित हैं - उन सबको।

अपनी बात अपनों से

'स्वाति बूंद और खारे मोती' कविता संग्रह में अनेक भावों को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। ये भाव जीवन के अनुभवों से ही मिले हैं। भावातिरेक तो स्वाति बूंद की तरह होता है जो शब्दों में ढल जाये तो सीपी में पड़ी बूंद की तरह अनमोल मोती बन जाता है- और मात्र उद्वेग की तरह उमड़ता घुमड़ता बिखर जाये तो कुछ भी नहीं। अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब मन की सीपी भावातिरेक को अंगीकार नहीं कर पाती और वे भाव धुंधली स्मृति बनकर मिट जाते हैं।

अथाह खारे जल के कगार पर पड़ी सीपी मोती को जन्म देती है। उन मोतियों का कोई स्वाद नहीं होता, किन्तु मानव मन के हृदय -सागर में उठे उद्वेलित भाव स्वाद हीन नहीं हो सकते ! शब्दों में ढल कर, काव्य सीपी में सिमट कर ये मोती कहीं मिठास से परिपूर्ण हैं तो कहीं खारेपन से जीवन की मिठास इनकी मिठास है और जीवन के खारे अनुभव ही इनका खारापन है। जब किसी वेदना -संवेदना से पलकों की सीपी में आकाश उतर आता है, मन भावों के बादल उमड़ घुमड़ कर भाव संघर्ष के रूप में बरस पड़ते हैं - तब आंखों की सीपी से खारे मोती ही जनमते हैं। कुछ ऐसे ही अनुभवों के संग्रह को नाम दिया गया है - 'स्वाति बूंद और खारे मोती।'

यद्यपि हर इन्सान के जीवन में मिठास भी होती ही हैं, अगर न हो तो उसे ढूंढ़ा जाता है, ढूंढ़ने पर भी वह न मिले तो उसे सृजित किया जाता है और फिर उसी की रक्षा-संरक्षण में जीवन जिया जाता है। लेकिन खारापन ऐसा भाव है जो अनायास ही मिल जाता है। अति अल्प हो तो भी अधिक रूप में अनुभव किया जाता है और अगर संभव हो तो विराट भाव से प्रस्तुत भी कर दिया जाता है। यह भाव किसी एक व्यक्ति का होकर भी एक वर्ग विशेष का होता है - उस स्तर के एक आम आदमी का होता है। किसी के द्वारा कही गयी बातें कभी अपने ही मन की लगती हैं। बस ऐसे ही - 'स्वाति बूंद और खारे मोती ' के भाव अपने भी है अपनों के भी। उन सब अपनों से जो मानवीय तथा मानसिक स्तर पर मेरे भावों के समकक्ष हैं - निवेदन है भावों का विश्लेपण मन की आंखों से करें। आपके मन्तव्य की मैं प्रतीक्षक हूँ।

प्रा. डॉ.सुशीला टाकभौरे

शरद पूर्णिमा -१९९३

अनुक्रम

१) शाश्वत् सत्य
२) साधना दीप
३) कविता धारा
४) तूफान
५) यथार्थ
६) जीवन
७) मृगतृष्णा
८) ज़रिया
९) दस्तक
१०) सीढ़ी
११) दिल की आग
१२) याद
१३) आदत
१४) धर्म
१५) कितने करीब
१६) मचान
१७) स्थिर चित्र
१८) विद्रोहिणी
१९) थकान
२०) सीप
२१) उम्मीद
२२) अपनी राह
२३) अन्तस
२४) सत्यं शिवं सुन्दरम्
२५) पहचान
२६) प्रेरणा के प्रतिमान
२७) पहचानी आंखें
२८) मेरा वसंत मुझे लौटा दो
२९) जीवन व्यापार
३०) विडम्बना

३१) वेइलाज
३२) दिग्भ्रान्त
३३) आगत का स्वागत
३४) कला की पहचान
३५) चाहो तो
३६) महंगाई
३७) दीवाली
३८) अंधेरा
३९) मणिदीप
४०) सच्ची बधाई
४१) चप्पा
४२) आज होली है
४३) होली मुक्त खुशी का त्यौहार है
४४) कुछ व्यंग्य
४५) वैंग
४६) चु नाव
४७) मैं तत्पर हूँ
४८) मायावी याचक
४९) सुन्दर मनमोहक
५०) वेखवर
५१) दर्पण में जीवन
५२) 'दर्पण' कुछ संदर्भ
५३) अनुपम राखी
५४) इमारत
५५) राख
५६) कड़वी वात
५७) नज़र
५८) करिश्मा
५९) चुम्बक
६०) मेहंदी
६१) सागर और आकाश

शाश्वत् सत्य

कोमल मन की
पावन भावनाओं
के बीच जलने वाले
'शाश्वत् दीप'
तुम निरन्तर जलना !

साधना दीप

तुम लो समाधि
मेरे आराध्य
मैं भी अडिग हूं
निश्चय पर
जलूं चिर जीवन
बन साधना दीप
आराधना में
निश्चल अबाध्य
मेरे आराध्य

कविता धारा

मेरी कविता धारा तो
वह लहर है जो
भाव सागर के
अन्तस में बैठे
जीव की उंसांस से
लहर बन कर उठ आती है।

तूफान

लहरें मिट जायेंगी
तो क्या हुआ
सागर तो रहेगा साथ में
हलचल मचा देंगे हम खुद
फिर तो
लहरों का तूफान होगा।

यथार्थ

यथार्थ की भूमि
सत्य का धरातल
कितना कठोर
कितना विषयुक्त !
क्या कहें इस आभास को
जीवन-सुधा या हलाहल ?

जीवन

जीवन एक भटकाव
कितने मोड़, कितने चौराहे ?
दुनिया की भीड़ में
जिन्दगी उंहसांस
घुटन जलन पीड़ा
कभी हर्ष कभी उन्माद
मिलनातुर राह और पथ विछोह
सम्पूर्ण पाने का अभिमानी
दिशा ज्ञान रहित मानव
बढ़ते चरण
जीवन ?

मृगतृष्णा

सजल प्यासी निगाहें
ढूंढती है
न जाने किस ठौर को।
मृगतृष्णा से तृपित
उद्वेलित से भाव लिए
कर विचार मन में
उस अहोभाग्य का
श्याम घन मिलन हर्ष में
जो नाचता है विभोर हो
कर स्वतंत्र मन-मोर को।
किन्तु अब तो पैर भी उठते नहीं
नाचने की कौन कहे
चलना ही दुश्वार है
डूबता ही जाता है मन निराशा में।
मन की वह आश
एक बूंद की प्यास
बन कर रह गयी है परछाई सी
हताश उदास इस तिमिर निशा में !

ज़रिया

अगर जीने का
ज़रिया मिल जाये
तो यह चाहा जाता है
जिन्दगी और भी लम्बी हो जाये।

दस्तक

तुम्हीं ने दस्तक दी
सदियों के
बन्द द्वार पर
खुलने का अभिलाषी
द्वार खुला भी
मगर— क्या ?
सामने पीठ थी
चेहरा जा चुका था।

सीढ़ी

क्या कहते हो ?
वे कुछ नहीं !
ठीक है
पर इतनी उपेक्षा क्यों ?
वे ही कभी आपकी
सीढ़ी बने थे
जिस पर पैर रखकर
आप
ऊपर चढ़े थे !!

दिल की आग

मिल जायें अगर
पलाश के पत्ते ही कुछ
छुप जायेगी दिल की आग
उन्हीं में फूल वनकर।

याद

किसे कहते है 'याद'
मस्तिष्क में खिचे
'रेखा चित्र'
धुंधली छायाएँ - वीते क्षण
भूत का वर्तमान पर
आच्छादन
दृश्य की विस्मृति
स्मृति का आह्वान
रूप में दीखती
रूप रेखा

याद
तुम क्या हो आज ?
स्वजनों की स्मृति नहीं
भूले विसरे चित्रों की
आकृति नहीं
जीवन का लेखा-जोखा नहीं
मात्र
दैनिक डायरी का विवरण
सुबह से शाम तक का कार्यक्रम
याद
जो आज के लिए लिखित रूप है।

आदत

दुनिया के चमन में
दुनियादारी के बीज
किसने बोये ?
किसने पानी डाला ?
अब कटुता, दुरावे की फसल ऊगी है ?
काट भी दोगे तो
ठूंठ रह जायेंगे
जमीन को आदत हो गयी है
अब एक ही फसल उगाने की !!

धर्म

राम की चिड़िया
चुगती हैं-
राम का खेत
फिर हम भी क्यों न चरें
अपने आदर्शों, कर्तव्यों का खेत ?
चुगना धर्म है
चरना अधर्म है
और बलात्कार, लूटमार क्या हैं ?
अच्छा ! सृष्टि संहार का नियम !
पीठ पर बोझ
और पैरों में बंधी रस्सी
चरना भी धर्म है
मगर- घास खाओ या पत्ती।

कितने करीब

आकाश में तैरता हुआ
बादल का टुकड़ा
देखो वह हरा भरा वृक्ष
कितने करीब है !
नीचे एक छोटा सा झोंपड़ा
सामने लाल साड़ी पहने
एक स्त्री
अपने घर का ताला खोलती है
और चाबी
कमर में खोंस लेती है
घर कितने करीब हैं !
कितने करीब !!

मचान

खेत में मचान बनाई गयी
कई वरस वीते
फसल आई
कटती रही - उम्र के साथ
कोई चोर नहीं आया

आज पकी फसल कहती है
मचान पर
चोर को बैठाया जाये
जो रखवाली भी करे
और चोरी भी कर ले

मचान खाली ही रही
चोर नहीं आया
पाला पड़ गया, सब धुंधला गया
खड़ी पकी फसल खराब हो गयी
मचान देखती रही

स्थिर चित्र

एहसास की भट्टी में गलाया
तुमने मुझे
और निश्चित सांचे में
ढ़ाल दिया।
मुक्त हंसी पर बन्धन है
फिर भी
मीलों लम्बी - तीखी मुस्कान
फैल जाती है
क्षितिज तक
मन बहुत लम्बा चक्कर लगा आता है
स्मृति की गैलरी में
जब
भूले विसरे चित्रों की
प्रदर्शनी लगती है
नजर
एक ही चित्र पर ठहर जाती है।
तुमने कहा था
ठहराव जीवन नहीं
मैं
दौड़ती हुई स्थिति का
स्थिर चित्र हूं!!

विद्रोहिणी

मां बाप ने पैदा किया था
गूंगा !
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया।
चलती रही
निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे
कितने पड़ाव आये !
आज जीवन के चढ़ाव पर
बैसाखियां चरमराती हैं
अधिक बोझ से
अकुलाकर
विस्फरित मन हुंकारता है-
बैसाखियों को तोड़ दूं !!
दिल की आग से
आत्मा चटकती है
भावावेश का धुंआ
कंठ द्वार को चीर कर
बिजली सफेदी पर फैला जाता है।
आज रोम रोम से
ध्वनि गूंजती है - और
पोर पोर से पांव फूटते हैं -
क्या मैं अमानवी हो गयी हूं ?
या असामाजिक ?

प्रचलित परिपाटी से हटकर
भागती हूं- सब ओर- एक साथ
विद्रोहिणी बन चीखती हूं
गूंजती है आवाज सब दिशाओं में
मुझे अनन्त असीम दिगन्त चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए।
मुझे अनन्त आसमान चाहिए॥

थकान

थके पांव
सारा गांव
पुकारता है - साथ चल
जो प्रथाएं वीथियों में
धूल - घूसरित साथ है
पर हर बात में
उनके लिए तू साथ चल

थके पांव
कुलांचता मन
रूकता नहीं, क्षण भर कहीं
अम्बर में है वह ढूंढता
अपना वही सपना कहीं
थकते नहीं
जहां पांव है

थकता नहीं इन्सान तब
जीवन है क्या और मृत्यु क्या
भगवान को नहीं चाहिए
सपना तो है इन्सान का

सपना तो है- पर चाहिए
धरती पर उसे सजाइये
थकते हुए हर पांव की
थकान आप मिटाइये।

सीप

मेरी दोनों हथेलियां
सीप की तरह जुड़ी हैं
किसी मोती की चाह में
चिन्तना गंभीरता के
असीम सागर में
डूबता उभरता मन
इसी सीपी में तो बन्द है।
सागर का मंथन
मोतियों का अवगुंठन
सीप का प्रस्फुटन
हथेलियों के खुल जाने में है।

उम्मीद

मेरी नजर रोशनदान पर है
दरवाजे भले ही बन्द हों-
उम्मीद है यहीं से आयेगी
सूरज की किरणें।
लम्बी रात के अंधेरे को
तोड़ने की बात
और सूरज की किरणों का इन्तजार
जागृती का संदेश

अपनी राह

उस जमीन पर चलना
जहां पहले से
कोई राह नहीं
कितना अच्छा लगता है
स्वयं
अपनी राह बनाना।

अन्तस

दो मूर्तियों को मिलाना
उनके अन्तस को गलाकर
एक लोंदा बनाना है
उसी से उनका
घर होगा।
एक ही छत और
एक ही जमीन को
घेरने वाली दीवारें
अपने -पन की
जिसे तोड़ने का
न डर हो - न संशय
न इच्छा - न जरूरत
जरूरत है
अन्तस को गलाने की

सत्यं शिवं सुन्दरम्

सत्य यदि देखूं
तो शिव रूप के लिए
सुन्दरतम् ही देना है
विभव रूप के लिए।

पहचान

क्यों रखें नाम,
नामों का क्या निशान
बन जाये जरूर एक बार
खुद अपनी पहचान।

प्रेरणा के प्रतिमान

सुखद भविष्य के स्वप्न जाल में
मत उलझो, रहो सावधान
जो वीत गया - सो वीत गया
रहो क्रियाशील, प्रेरणा के प्रतिमान।
हिम्मत है जब तक मन में
और प्राप्त ईश का वरदान
स्वप्न स्वयं साकार करोगे
पाओगे सुखद भविष्य-वर्तमान।

पहचानी आँखे

मैंने देखा आज
उन आंखों को बहुत करीब से
जिसकी चाहत थी युगों से
एक दिन पहले भी कहीं देखी थीं
ऐसी आखें
मगर वे कहीं खो गयीं थी
छुप गयीं थीं।
मैंने बहुत ढूंढा था उन्हें
सड़कों पर, गलियों में
मकानों में, दुकानों पर
मगर नहीं मिल सकी
शायद भुला दी जाती

लेकिन आज फिर वहीं आखें
पहले भी चेहरा नहीं देखा था
आज भी चेहरा नहीं देखा है
उन आंखों की पहचान तो
सिर्फ 'आंखें' हैं
जो सबके चेहरे पर हैं।
जी चाहता है सब आंखों को गौर से देखूं
शायद फिर वे आंखे दिख जायें
जो देखें बड़े करीब से !
मैंने सिर्फ आंखें पहचानी है
आंखों का भाव पहचना है
पहचान का एक तथ्य जाना है
कितना स्नेह, कितना अपनापन
'आंखें' सचमुच 'खजाना' है।

मेरा वसन्त मुझे लौटा दो

प्रिय, मेरा वसन्त मुझे लौटा दो
दिन बीते बरस बीते-
सदियां बीत गयी हैं
तुम मेरा जीवन मुझे लौटा दो।
कबसे हम दूर है
जबसे जीवन आंकडों में जकड़ा है
घंटो में बटी जिन्दगी में हम
विपरीत दिशा में भागते हैं
जब भी मिलते हैं, अजनबी की तरह
कुछ प्रश्नों के रूप में
तुम उत्तर बनकर मेरे प्रश्न मुझे लौटा दो।
पथरीले देश में अकेली भटकती हूं
खट्टे सन्तरे की फांको से
दिन बीतते हैं बरसों से
मैं पुकारती हूं तुमको-
अपना मधुर साथ मुझे लौटा दो।
जिन्दगी की दौड़ में
अजनबी भीड़ में
प्रगति सी गतिमान मैं
ठहरना चाहती हूं कुछ देर
तपती धूप में तुम-
मेरी छांह मुझे लौटा दो।
जानती हूं तुम भी
परेशान हो हर बात से
हर व्यवस्था और रफ्तार से

क्यों न चुरा लो कुछ समय
थोड़ा सा वसन्त
जो हमारी दूरियां मिटा दे
यह विश्वास मुझे लौटा दो।
उम्र के पतझर में
आस के फूलों में
मुझमें वसन्त जगा दो
कि मैं मंजरी सी फूल उठूं
कोयल- सी कूक उठूं
वसन्ती चुनरियां में
पवन- सी झूम उठूं
मेरे प्रियतम-
मेरे गीत मुझे लौटा दो।
हाथों की मेहंदी और चूड़ियों की खन् खन्
नुपूरों की रूनझुन और पायल की छम - छम
जीवन के कण-कण में सरगम जगा दो
खुशियां बरसा दो
प्रियतम की प्यारी दुल्हन बना दो
जीवन की बगिया में वसन्त बिखरा दो-
मेरा वसन्त मुझे लौटा दो।

जीवन व्यापार

यह जीवन एक व्यापार है
जिसमें अनिवार्य हैं
धोखेबाजी, जालसाजी
अवसरवादिता ही इसका आधार है।
अगर जीवन में कुछ करना चाहते हो तो-
सीखिये वाक्-पटुता साजिश और बेइमानी
क्योंकि आज के आदर्शों का है यही मानी।
छल कपट में मिले सफलता
है सब खुदा की मेहरबानी
मेरा ही तो सब कुछ है
किसको कैसी हैरानी !
नहीं हक इसमें उनका कुछ भी
जो है पाक-धर्मावतार
सह नहीं सकते जो
अपने आदर्शों पर
हल्का- सा वार।
उन्हें चाहिए कि वे
इस बाजार से हटकर
केवल भाव सुने
और भावी-भावों का
अनुमान करें
कितने में बिकता है
सत्यनिष्ठ ईमानदार
और कितने में
गुनहगार
इन भावों का अन्तर ही
इस बाजार का आधार है
यह जीवन एक व्यापार है।

विडम्बना

कैसी है यह विडम्बना
प्रभु के उदार मन की
दिया तो दिल सबको समान है किन्तु
हर दिल पर परत है
अपने अहं की।
दिलों के बीच भी
वर्गों सा भेद है
भले ही दिल टूट जाये
किन्तु और सब बातें अटूट हैं
क्योंकि समाज के समक्ष
व्यक्ति का दिल एक झूठ है।
यहां कीमत है चेहरे के भावों की
हृदय के स्थान पर
मस्तिष्क की प्रधानता है
यहां कोई झुकता नहीं झुकाने पर
दिल भी अहं में डूबा है
क्यों झुकेगा ?
इसीलिए अक्सर टूट जाता है।

बेइलाज

मेरा मस्तिष्क कहता है
क्योंकि मन तो
बहुत बीमार है
बढ़ती हुई इमारतों के किनारे
फैलती सड़क पर
दौड़ते पहियों की धूल
खाते खाते
मन तो बीमार है
मस्तिष्क ही कहता है-
"अब सब कुछ बेइलाज है।"

दिग्भ्रान्त

टेस्ट ट्यूब से उत्पन्न
बच्चे की तरह
मन तरसता है
ममत्व और अनुभूति के लिए
समाज - परिवार से अलग
मात्र एक यांत्रिक पुतला
दिग्भ्रान्त
समय की डोर से बंधी सांस
एक बंधुआ मजदूर की तरह
जीवन बिताना भी
क्या जीवन है ?

नमूना

मैं रह सकती हूँ
समुद्र की तलहटी में
जल वनस्पति की तरह
अपार जल के भार को
वहन करते
थल-नभ के सभी सुखों से दूर
अंधेरों से प्रकाश में
कभी न आ पाने के दुख से बोझिल
हिंसक जन्तुओं के बीच
साहचर्य को जताते
गलने सड़ने की बात से निरपेक्ष
मैं सब कुछ सह सकती हूँ
मगर यह नहीं कि बरबस
मुझे किसी छोटे गमले में
लगाया जाये
या किसी नर्सरी में
मात्र अर्थोपार्जन के लिए
एक नमूने के रूप में रखा जाये।

आगत का स्वागत

मन भावों का जगत
दिखावा रहित मूल-रूप
स्वच्छ आदर्श स्वरूप
जिस रूप में पहली वार देखा है
अब कोई अन्य विद्रूप
नहीं चाहा जायेगा।
आत्मा की ललक
खुशी की चहक
व्यवहार की मिठास
आंखों का स्नेहिल हास
जो कभी पहचाना है
अब नहीं भुलाया जायेगा।
गांवों की संस्कृति
शहर की चिमनियों के
धुएं के बीच
चाय उड़ेल कर
सिर्फ कर्तव्य पूरा करे
नहीं सुहायेगा।

मानव के जंगल में
स्नेह फलित लताएं
बहुत कम होती हैं
फूल खिलें मगर
दूर की व्यवहारिकता से कुम्हला जायें
कैसे सहा जायेगा।
अनजाना अनचाहा अतिथि
याचक बन यादि आये अ-तिथि
कांच की दीवारों में घिरे
अपने प्राप्य को नहीं पायेगा।
यदि निराश लौट जायेगा।
आगत का स्वागत नहीं हो पायेगा
क्या आपको सुहायेगा ?

कला की पहचान

कलाकार की कला नापना
आसान नहीं है
हर किसी को इसकी
पहचान नहीं है
श्रध्दा विहीन पुष्प तो
चढ़ा सकते हैं सब लोग
मगर
श्रध्दा भाव की सुगन्ध
चढ़ाना महान् है।

चाहो तो

रोकना चाहो तो
रोक लो
सूरज का रास्ता
करोड़ों रश्मियों को
रोक कर भी
क्या खाक रोकोगे
कर सको तो
स्थिर करो
पृथ्वी की चाल को
करोड़ों कदमों की
स्थिरता
नहीं तुम देख पाओगे।

महंगाई

हम कभी छत पर खड़े होकर
ऊगते सूरज को निहारते थे
और नयी आशा-उमंग से भरकर
दिन भर के कार्यों में व्यस्त हो जाते थे।
किन्तु आज सुबह होने पर
हम सूरज को नहीं
ऊगती महंगाई को निहारते हैं
और चिन्ता व उदासी में डूब कर
अभावों से भरे
'बजट' को ठीक करने में
व्यस्त हो जाते हैं।

•

दीवाली

दीवाली आ गई है
रोज सुबह
दरवाजा खोलने के पहले ही
लगता है
घर के सामने जले फटाखों के
कागजी टुकड़े पड़े होंगे।
हर धमाके की आवाज
कानों में
फटाखों की तरह गूंजती है।
सूरज भी हर रोज
धुलकर, निखर कर ऊगता है
दिवाली आ गयी है।
लेकिन यह क्या ?
हर मकान लिपे पुते चेहरे की तरह
भावहीन हो गये हैं
नये खर्च की चिन्ता
फर्श पर फैले
पेन्ट व सफेदी की तरह
हटाये नहीं हटती
त्यौहार का आधार भी
कुछ बदरंग है।

पटाखों की हर आवाज
विध्वंशात्मक लगती है
फुलझड़ियां चटकती आशा और
क्षणिक खुशियां बन गयी हैं !
अभावों के चिथड़े
चिन्दी चिन्दी होकर
हर दरवाजे के सामने
बिखर गये हैं
दिये कुछ जल्दी ही बुझ जाते हैं !
सभ्यता का जलपान
औपचारिक है
आज हर इन्सान
दिवाली के नाम पर
भिखमंगा हो गया है।
कर्ज-भीख-दान
बढ़ते दाम
इनाम - इनाम
दीवाली है।

अंधेरा

एक नेत्रहीन की दुनिया देखी थी
कुछ क्षण के लिए
काले फौलादी रंग की
दीवारों के बीच
जब जीवन की रेल
अंधेरी सुरंग से गुजरी थी
तभी जाना था
कैसी होती है
अंधेरी दुनिया
अस्तित्व हीन, अस्था हीन !!

मणिदीप

प्रेम की वाती, स्नेह भरा दीप
युग युग से
दे रहा था प्रकाश दुनिया को
आज वही दीपशिखा घिरी है
झंझावातों से।
युगों के आदर्श कलंक बन गये
आज हर दीप खून से भरा है।
प्रेम की वाती अब
राक्षसी वृत्ति बन गयी है
और उस दीप का आलोक अब
राह दिखाता है अन्धत्व को
हिंसा क्रोध और विद्रोह को
नित नये दीप जलाने के लिए
खून एकत्रित किया जाता है
- - - - -
जैसे भारत के निर्दोष लालों का
भारत में किसी सन्त ने
पानी के दीप जलाये थे
आज धर्मान्ध पंथी
खून के दीप जलाते हैं और
राक्षसी विजय पर खुशियां मनाते हैं।

हर जाति धर्म के नाम पर
हर त्यौहार या व्यवहार में
सीमित उद्देश्य - स्वार्थ
भेदभाव से भरे
एक लघु दीप जलाने के लिए
कई प्रकाश पुंज दीप
बुझा दिये जाते हैं !
मानवता के सौदागरों के हाथ
विश्व बन्धुत्व के मणिदीप
मिट्टी के दिये के भाव
बेच दिये जाते हैं !!

सच्ची बधाई

'मानवता' मां रोती है !
एक बेटे के जन्म पर
दूसरा बेटा
हत्या कर आया है
तीसरे बेटे की।
आज खुशियों की दीपावली में
खून से चिराग भर दिये हैं
राक्षसी अंधी वृत्ति ने
मनाओं खुशियां
जलाओं दीप
अपने ही खून को जलाओ
और जलता देखो !
कब तक लड़ेंगे भाई-भाई !
पड़ोसियों के कहने से
मां का कलेजा काट काट कर
अपना हिस्सा बांटेंगे !!
कब तक ?
कितने राम पैदा हुए रावण नहीं मरा
कितने राम ही रावण बन गये।
आज मानवता का रक्षक बेटा ही

विश्वव्यापी रावण की
जड़ों को काट सकता है
तभी अन्धत्व हटेगा
क्रूरता संकीर्णता मिटेगी
तभी खुशियां मनायेगी मां मानवता
अपने सभी पुत्रों को
अंक में समेट कर
आंखों का खून प्रेमाश्रु में बदल
स्नेहदीप जलायेगा - 'जन्म दिन' पर
सच्ची बधाई देगा - सारा विश्व
मानवता रक्षक बधाई हो !
मानव पुत्र चिरायु हो !!

चश्मा

मेरी आखें भी देखा करती थीं -
कौन छोटा है बड़ा, कौन खोटा है खरा
कौन अपना है, कौन पराया है
कौन मजहब का, कौन जाया है
कौन शोहरत का - कौन दौलत का
कौन मालिक है दीन-ए-सल्तनत का
कौन दर दर भटकता मुफलिस है
कौन इल्मे-हुनर का मालिक है
मेरी आखें भी देखा करती थीं
वे गुमराह सी भटकती थीं
अपनी गफ़लत को मैंने पहचाना
आखें बेनूर हैं - यही जाना
खुदा के नूर का यही चश्मा
अपनी आंखों पे तब से ही ताना।
मेरी आंखों में आसमां फैला
मेरी आंखों में समन्दर गहरा
कितने तारे हैं कितने मोती हैं
मेरा चश्मा मुझे दिखाता है

मेरा चप्पा मुझे बताता है
फर्क इन्सानों का हटाता है
हम सभी नूर है उन 'दीदो' के
जर्रा जर्रा वही दिखाता है
मेरा इल्मे हुनर यही चप्पा
मेरी शोहरत मेरी दौलत
मेरा मजहब यही चप्पा
मेरा चप्पा मेरा चप्पा

आज होली है

आज कोई उदास न रहे
किसी कमी से कोई हताश न रहे
कोई रंज-गम किसी को याद न रहे
जो जिस हाल में हो
मनाओ खुशियां - आज होली है
उम्र की दरारो को
खुशियों से भर दो
अपने पराये का तनमन
रंग गुलालों से रंग दो
कोई द्वेष न रखो - आज होली है।
मुक्त गगन में
मुक्त खुशी का
उड़ाओ अबीर, गुलाल
प्रेम की पिचकारी में
खुशियों के रंग भर
कर दो सबको बेहाल- आज होली हैं !

होली मुक्त खुशी का त्यौहार है

कोई सफेदपोश न रहे
आज के दिन
दिखावटी सभ्यता शालीनता का
बाना उतार दो
आज होली है
होली मुक्त खुशी का त्यौहार है।
मन की दबी इच्छा
कुण्ठा बन जायेगी
ईर्ष्या-द्वेष की कालिमा
मन में रह जायेगी
जो रंग न डाल सकेगा
कीचड़ उछालेगा
लोगों का गला काट कर
खूनी होली खेलेगा
बदल दो मन आज सबका
लगाओ प्रेम का गुलाल
आज होली है
होली मुक्त खुशी का त्यौहार है !

मिलकर रहने वाले
जाति-धर्म की गलियों को पार कर
प्रेम के रंग में रंग जाते हैं
होली के रंग गुलाल
उन सबको भाते हैं।
होली के पीछे कितनी कथाएं जुड़ी हैं
क्यों न एक और जुड़ जाये
होली मानव मात्र के लिए
'एकता व समानता की कड़ी है'
हिन्दू नहीं- भारतीय मनायें
हिलमिल कर जी भर खेले
आज होली है
होली मुक्त खुशी का त्यौहार है !

कुछ व्यंग्य

१) होली के पर्व पर
कुछ सज्जनों ने
महामूर्ख कवि सम्मेलन बुलाया
और अपने आपको
महामूर्ख कहलवाया।

२) तेइस मार्च को
देशभक्त जागरूकों ने
शहीद भगतसिंग की
पुण्यतिथि मनायी
उपस्थित श्रोता कवियों ने
एक दूसरे को
अपनी कविता सुनाई।

३) दिवाली की रात
दिलवालों ने
रात भर महफिल जमाई
कुछ लक्ष्मी लुटाई
कुछ जीत-हार के गवांई।

४) रमजान के महिने में
कुरान के अनुसार
कुछ लोग शरीफ बने
इसके पहले क्या थे ?
आगे क्या होंगे ?
वह तो खुदा ही जाने।

५) ईसा के जन्म पर
भरतीय ईसा-पंथियों ने
उषाकाल में जुलूस निकाला
भारतीयता के
नख-शिख ढ़के वस्त्र पर
मिनी फ्राक डाला।

६) गणेश उत्सव दुर्गोत्सव
शारदोत्सव का काल आया
धार्मिक समाज सेवियों ने
सड़कों पर
फिल्मोत्सव मनाया।

बैग

एक शिक्षिका मिली मुझे बस में
कहने लगी -"वेतन बहुत कम मिलता है
सरकार तो बहुत देती है - मगर
व्यवस्थापकों का ही दिल जलता है।"

मैंने कहा - सर्विस करती हैं क्या आप ?
मेरा मतलब बैग नहीं है आपके पास।
तब वह निरीह आंखों से
मुझे देखते हुए
कहने लगी
बहुत सकुचाते हुए
"बैग मेरा टूट गया है
बनाने को दिया है।"
अचानक मुझे याद आया
हाय ! मैंने क्या पूछ लिया है !!

तब उसकी निरीहता को
कम करने के लिए
उसके संकोच को
दबाने के लिए
मैंने भी अपना बैग
उसको बताया
कम फटे बैग को
ज्यादा दिखाया
कहा - "मैं भी शिक्षिका हूं
मुझे भी देना है - बैग
बनाने के लिए।

चुनाव

हमारे गांव में
चुनाव का बड़ा जोर है
एक तरफ बंदूक है, तो
दूसरी तरफ तलवार है।
तलवार खड़ी चौंरस्ते पर
चमक रही है
बन्दूक भी दम साधे
सन्दूक से बाहर निकल
निशाना तक रही है।
सब तरफ अपना ही अपना
बोल-बोला है
आ गया 'ये' वाला है
आ गया 'वो' वाला है।
ब्रह्म मुहूर्त में भजन की लय में
नारे ही सुनाई देते हैं
बीतती रात तक
तारों के बीच, ग्रह जैसे
तीर से जाते दिखाई देते हैं
हम तुम्हारे, तुम हमारे

तुम सब हमें जानों
हमें और सिर्फ हमें ही
पहचानों।
चुनाव के दिन तक का ही
तो वायदा है
बाद में कौन पूछता है
सब जानते हैं पुराना कायदा है।
कितनी सौजन्यता है
भाई, दादा, मामा कहकर पुकारते हैं
ढोल मंजीरे ताल के स्वर में
कितने गीत सुनाते हैं।
क्या सजधज है
क्या अपनापन
कितना प्रीतिभाव
जी चाहता है
होता रहे
हर महिने 'चुनाव'
जैसे जलाशय में उतरी
सजीधजी नाव
लग जायेगी
किनारे
उस दिन जब
हो जायेगा चुनाव

मैं तत्पर हूं

तुममें और मुझमें यही फर्क है
तुम डरते हो
अपनी क्रीज, अपनी इमेज
खराब हो जाने की बात से
और मैं तत्पर हूं
अपनी आधी साड़ी फाड़ कर
दे देने के लिए
हरिश्चंद्र की पत्नी की तरह।
चाहे मरघट का टैक्स हो
या कफन
विके हुए पुत्र के
कफन के दावेदारों
तुम बात करो
नियम और कानून की
मैं तत्पर हूं
मगर साथ ही प्रश्न है
नियम और कानून के
औचित्य का
तुम बात को
अपनी नजर से देखते हो
और मैं
सबकी नजर बनना चाहती हूं।

मायावी याचक

हे देव,
तुम्हारी मायावी सृष्टि में
कितने प्रतिरूप खड़े हैं
याचक बनकर।

भीख-दान की बात नहीं
फिर भी याचक हैं
जीवन-पथ पर सबके आगे
बढ़ जाने का चाव लिये वे
हरक्षण नत-मस्तक हैं
मात्र कृपा की बाट जोहते
खड़े हुए हैं क्रिया-हीन से
जीवन से जड़
पगतल में पड़
मांग रहे हैं
बात बात में एक सफलता।

कितने याचक, कितने यूथ
कितनी बातें, कितने रूप
आप नहीं घबराते
इन मायावी याचक से ?

हे देव,
आपकी माया से ही
ये मायावी हो गये हैं
मांग मांग कर ये
इतना पा जायेंगे
कि एक दिन आप
खाली हाथ हो जायेंगे।

सुन्दर मनमोहक

खुशबू से सने
देखने में सुन्दर
कितने दुलारे
रस में भीगे
जैसे रसगुल्ले प्यारे प्यारे।
इन्हें ऐसे ही रहने दो
रस मत निचोड़ों
जानते हो क्यों ?
इनका अस्तित्व मिट जायेगा।
लग जाये न हवा
शीत लहर की
तपते हुए ग्रीष्म लू की
खुशबू उड़ जायेगी
रस सूख जायेगा
अस्तित्व मिट जायेगा
इन्हें संरक्षण चाहिए
आप सबका सहयोग चाहिए।

बेखबर

छोड़िये भी - जाने दो
क्या जमाना था ख्वाबों की दुनिया का
बन्द आंखों से देखा था
जमाना हमने।
उम्र यूं ही गुजार दी अब तक
वक्त की बरबादी से बेखबर।
गर एक-एक लहमों को हम
बांध लेते कलम की नोकों से
दिन उड़ते नहीं, जमाना न बदल पाता
तब कितनी बड़ी उम्र होती
हमारी अब तक।

दर्पण में जीवन

वीस वर्षीय सुकुमारी
देखती है दर्पण
वड़े चाव से, लगाव से
आंखों की पुतली में
दर्पण के प्रतिविम्व को निहारती
आते जाते नजर पड़ जाती है
दर्पण पर
मुस्कराकर देखती है
मुख सौन्दर्य, हाव भाव
मन की उमंग, प्रिय की छवि
सपनों का अम्वार, जीवन संसार
छोटे से दर्पण में।

चालीस वर्षीय प्रौढ़ा
हाथ का काम निपटा कर
थोड़ा सा अवसर पाकर
खड़ी हो जाती है
दर्पण के सामने
देखने स्वयं को या
वीस वर्ष पहले और आज के अन्तर को।
स्वाभाविक शैथिल्य, अनावश्यक स्थूलता
जिम्मेदारियों में डूवा जीवन
दर्पण में खोजती है
छिपे हुए कुछ रजत तार
गहरी पकड़ से
एक एक निहारती।

साठ वर्षीय - समृध्द जीवन
सेवा मुक्त गृहकार्य में दक्ष
सबकी गल्तियां निकालती
बड़बड़ाती, चिढ़चिढ़ाती
बहू बेटियों पर लगाती प्रतिबंध
दर्पण न देखो काम करो।
स्वयं कभी सबकी आंख बचाकर
देखती है दर्पण
चेहरे की सिलवटे
आंखों के घेरे
बालों में फैलती सफेदी
दांतो का दर्द
मुंह खोल कर दर्पण में देखती है और
विरक्ति से हट जाती है।

अस्सी बरस की वयोवृध्दा
नाती पोतों को बहलाती टुलराती
समझाने को उनको
दिखाती है दर्पण
स्वयं को भी निहारती है
दर्पण में
सिर पर सफेदी
आंखों में धुंधलापन
पोपला मुंह - झुर्रियों का अंकन
आंखें झपका कर, होठ लटकाकर
हंसती है खुद पर
देखती है एक टक
उम्र के साथ दर्पण
या दर्पण में जीवन।

'दर्पण' कुछ संदर्भ

हिरनी सी भागती
वन कन्या
देखती होगी मुख छवि
नदी के जल दर्पण में।

कोहिनूर से भी कीमती
होगा वह दर्पण
प्रिय को निहारा था
सीता ने जिसमें
पलके झुका कर
हाथों के कंगन में।

वेटे, तख्त-ताऊस, वेगमें नहीं
आखिर में एक ही था सहारा
दर्पण में निहारता
ताजमहल का नजारा
वन गया था दर्पण
जीने का सहारा।

भाव सौन्दर्य के अंकन में
अक्षम थे शायद
विहारी के दर्पण
इसीलिए उनमें
मोरचे लग जाते थे।

आज की आधुनिका
देखती है दर्पण वैग से निकालकर
लिपिस्टिक पावडर ठीक कर
बालों को संवार कर
रख लेती है दर्पण
वैग में संभालकर।

अनुपम राखी

राखी का त्यौहार
भाई बहन का प्यार
रेशमी धागों का बन्धन
रक्षा कर्तव्यों का अनुबन्धन।
इसी देश में कर्मवती ने
और हुमायूं भाई ने
इस बन्धन को माना था
सैनिक रक्षक हर भाई है
देश-जाति का, धर्म-समाज का
मानवता का, हर घर का।
किन्तु धुंआ कैसा है यह ?
किस दुश्मन ने आग लगाई ?
प्रेम प्रीति की धुंध नहीं
यह मांस गंध से पूर्ण
देश को जहरीला करता है !

इसी धुएं को काट मिटाना
हर भाई का आज धर्म है।
भारत मां के हर सपूत की
मानवता ही आज बहन है।
आशा के तारों वाली
सूर्य चन्द्र की ज्योति वाली
देश प्रेम की रेशम डोरी
कितनी अनुपम है यह राखी।
जाति धर्म का भेद भुला दे
जो रक्षक है मानवता का
वही भाई अधिकारी है
इस अनुपम राखी का।

इमारत

सड़क के किनारे
बनती इमारत
छत को बनाने के लिए
लोगों की सम्मालित प्रक्रिया
कितनी सहयोग पूर्ण द्रुतगामी है।
संसार में मनुष्य की इमारत को भी
बहुत से लोग मिलकर बनाते हैं
पर कुछ नाम
हमेशा के लिए याद रह जाते हैं
विशेष विशेषाधिकार पूर्ण
जिनसे जीवन के सूत्र
प्राप्त किये जाते हैं।
नींव के पत्थर
भराव - उठाव
सुरक्षा के लिए अपनेपन की
दीवारें उठाई जाती हैं
क्रमशः स्तरों में उठी
जीवन की इमारत
अन्तिम छत के साथ
नींव के पत्थरों की बहुत सी बातें
याद रखती हैं।
वे कुछ लोग जिनके चेहरे
भीड़ में भी साफ नजर आते हैं
जीवन की हर शिक्षा परीक्षा मूल्यांकन में
वे पास नजर आते हैं।

राख

राख ठंडी है या गरम
कौन यह सकता है ?
राख सिर्फ राख है।
अंगारों की परत पड़ते
सबने देखा
चिनगारी ही घुली थी
क्षण - क्षण
अब भी बाकी होगी कहीं
फिर भी
राख अंगारा नहीं
सिर्फ राख है।
अंगारा राख बन सकता है
किन्तु मजा तब है कि
राख फिर से दहकने लगे
और अंगारा बन जाये।

कड़वी बात

माफ करना
मेरी बात जरा कड़वी है
बहुत कम अन्तर है
अनुभूति के जीने और
मरने में।
मुस्कान की तहों में
अलग अलग भाव होते हैं
कभी तहें दोहरी होती है
दो मुंहे और दोहरे व्यक्तित्व की तरह
धीरे से हंस लेने में
और मन ही मन रो लेने में
बहुत कम अन्तर है
बात सच है
मगर जरा कड़वी है।

नजर

हर बात में अच्छाई है
बुराइयों के साथ
आप अच्छाइयों पर
नजर रखिए
कोई जब अपना कहे
फिर भी गैर हो
गैरों को अपना बनाने के लिए
अपना असर रखिए
बैर जब प्रेम से
खत्म हो सकता है
छुटपुट बातों से
बड़प्पन को ही बढ़ावा दें
हर चीज को आइने में ही
क्यों देखें
कुछ तो अपना ज़िगर रखिए
आप अच्छाइयों पर नजर रखिए।

करिश्मा

जब लग गये
आम के पेड़ में खजूर
लोगों ने कहा - वाह !
क्या करिश्मा है -
सच क्या है, कौन कहे
किसका है कसूर
लोग कहते हैं;
होता वही है
जो अक्सर होता है
खुदा को मंजूर !

चुम्बक

दिल का मर्म
भावनाओं का घनत्व
पिछला अपनत्व
बनके चुम्बक
खींचता है सबको
चक्षुओं में बसकर
दीवार हो चाहे समय की
या दूरी की
लगा रहता है मन फिर भी
जहाँ भी रहें
सम्पर्क नहीं टूटता
दीवार भले ही न सरके
चुम्बक को सरकाया जाये
किनारा मिलते ही
वे गले से लग जायेंगे लपककर
यह अपनत्व, यह आकर्षण
चुम्बकत्व का आधार
दो ध्रुव रहेंगे जब तक
चुम्बक रहेगा।

मेहंदी

मेंहदी रचे हाथ, लाज भरे बोल
पिया को देख, धीरे से घूंघट के पट खोल
हाथों से मुखड़ा छुपा लिया
मुखड़ा रहा दूर
हाथों की मेहंदी ने ही
पिया का प्यार पा लिया।

लाल स्याही का पेन लिए
हाथ में
फूल बना रही थी
एक संभ्रान्त शिक्षित महिला
देखकर नौकरानी ने टोक दिया-
"क्या.... बीबीजी, दिल को बहला रही हैं
लाल स्याही से मेहंदी के फूल उतार रही हैं !
अजी, आप क्या जानेंगी मेहंदी का महत्व
जिसे नहीं मन के बारे में सोचने का वक्त !
मेहंदी तो पिसकर घुलकर ही रच पाती है
अपने को मिटा कर प्रिय का प्यार पाती है।
श्रमशीला, सहनशीला ही रचायेंगी मेहंदी
आपको तो यह लाल स्याही भी पड़ेगी मंहगी
कोई कह देगा - असभ्य गंदी
आप भी बस ! लगाई भी तो नकली मेहंदी !

अरमानों की सब्ज पत्तियाँ
बेरहमी से जब
कूटी जाती हैं
नीरस पत्थरों से,
खून का रंग
आंसुओं में घुलकर
मेहंदी बन जाता है
वक्त के साथ
हाथों पर
उसी मेहंदी का
रंग खिलता है !

सागर और आकाश

मैंने कभी सागर नहीं देखा
तिमिर घन के कूप में हूँ
बरसों से
सोचती हूँ - सागर यही है
नापती हूँ हर समय इसको
कभी ऊंचाइयों से
और कभी गहराइयों से
मगर विस्तार से अनभिज्ञ मैं
कब तक रहूँगी तिमिर घन के कूप में !
वे रश्मियों की डोर
जो मुझको बुलाती हैं
कि जिससे टरने की बात
कुछ बेमेल लगती है
पलक फैली हुई सी
नापने को आकाश की सीमा
चेतना चुप है कि अब तक
क्षुद्रता के साथ क्यों सागर रहा मुझमें !!
आज मैंने खुले आकाश के नीचे
असीम सागर को देखा
सागर जो आकाश से जुड़ा है
आकाश उसमें है
वह आकाश तक है।
यह समय प्रातः नहीं मध्यान्ह का है
मैं ढूंढ़ती हूँ क्षितिज - रेखा
पूर्व से पश्चिम की ओर
मैं जान लेना चाहती हूँ
क्षितिज के उस पार क्या है ?
सूरज नहीं - सागर नहीं
आस्था का अस्तित्व केवल
समूचा विश्व हममें है।
समूची चेतना हममें।
सागर हमारे हृदय में है
मन में है आकाश
सूरज हमारी चेतना का प्रकाश
क्षितीज स्वयं ही ढूंढ़ता है
अपनी धरती अपना आकाश

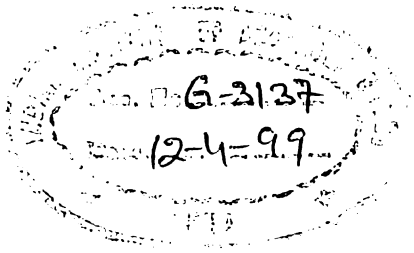

प्रा. डॉ. सुशीला टाकभौरे

परिचय :-

जन्म : ४ मार्च १९५४,

बानापुरा (सिवनी मालवा) जि. होशंगाबाद (

शिक्षा : एम.ए, बी.एड्, पी.एच.डी. (हिंदी)

सम्प्रति : अध्यापन - एस.के.पी. कॉलेज, क

सम्पर्क : १४ वैष्णव अपार्टमेन्ट, शक्करदरा ले-आउट,

नागपुर ४४००२४. (म.रा.)

Library IIAS, Shimla
H 811.8 T 145 S
G3137